इकाई 8 जापान और पश्चिम (मेजी पुनः स्थापन तक)

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- पश्चिमी देशों के साथ जापान के प्रारंभिक संपर्कों के बारे में जान सकेंगे :
- यह सीख सकेंगे कि जापान ने पृथकता की नीति क्यों अपनाई;
- यह समझ सकेंगे कि जापान के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने के पश्चिमी ताकतों के प्रयासों के पीछे क्या कारण थे;
- जापान में विदेशियों के साथ संबंधों को लेकर होने वाली बहसों के बारे में जान सकेंगे;
- यह समझ सकेंगे कि जापान को किन दबावों और परिस्थितियों में आकर अपनी पृथकता की नीति को छोड़ना पड़ा; और
- यह समझ सकेंगे कि जापान एक उपनिवेश क्यों नहीं बना।

8.1 प्रस्तावना

जापान का विभिन्न संस्कृतियों और समाजों के साथ आपसी व्यवहार का लंबा ऐतिहासिक अनुभव रहा है। इससे यहाँ नई विचारधाराओं को हासिल करने की परंपरा बनी है, और इस परंपरा का अपने उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल करने की रीति बनी है। इस इकाई का उद्देश्य मेजी पुनः स्थापना तक पश्चिमी राष्ट्रों के साथ जापान के संबंध का पता लगाना है।

पश्चिमी राष्ट्रों के साथ जापान का पहला अनुभव 16वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ, और इस संपर्क से पश्चिम के बारे में जानकारी की परंपरा बनी जिसका प्रभावी इस्तेमाल 19वीं शताब्दी के मध्य में किया गया।

जापान का इस तरह का दूसरा अनुभव 19वीं शताब्दी के मध्य में उस समय हुआ जब पश्चिमी साम्राज्यवाद अपने चढ़ाव पर था। इस सपर्क के परिणास्वरूप जापान ने एक पूर्व-आधुनिक समाज से एक आधुनिक समाज के रूप में विकास किया, और इस प्रक्रिया में वह किसी पश्चिमी ताकत का उपनिवेश भी नहीं बना। राष्ट्रीय पुरुत्थान और राष्ट्रीय स्वाधीनता का संरक्षण पश्चिमी देशों के साम्राज्यवादी अतिक्रमण से सफलतापूर्वक निपटने का परिणाम था। इस इकाई में इस बात पर विचार किया गया है कि जापान के आंतरिक

स्वरूप में बदलाव की मुख्य धाराएं क्या थीं और उनकी पश्चिमी देशों के अतिक्रमण के प्रति क्या प्रतिक्रिया रही।

8.2 प्रारंभिक संपर्क

सन् 1542 में एक चीनी नौका पर यात्रा कर रहे तीन पुर्तगालियों को तूफान के कारण जापान के तानेगाशिमा द्वीप में उतरना पड़ा। कहा जाता है कि यूरोपियों और जापानियों के बीच सबसे पहला संपर्क यही था। इस थोड़े समय के संपर्क के बाद पुर्तगाली व्यापारियों और मिशनरियों का आना अधिक हो गया। यूरोप के साथ जापान के सपंर्क से जापान में केवल बंदूकों और तंबाकू जैसे नए सामान ही नहीं आए बल्कि जापानियों को कई नए विचारों और ईसाई धर्म के संपर्क में आने का भी अवसर मिला। जापान के शासकों ने सक्रिय होकर इन संपर्कों को बढ़ावा दिया और नए विचारों को ग्रहण करते हुए उन्होंने मिशनरियों को उनके धर्म का प्रचार करने की छूट दे दी।

लेकिन, तोकुगावा काल के शुरुआत के वर्षों में यूरोपियों और जापानियों के बीच समस्याएं उठ खड़ी हुईं, जिनका आंशिक कारण था ईसाई धर्म को एक विनाशकारी प्रभाव के रूप में देखा जाना। इसका परिणाम यह हुआ कि विदेशियों के जापान में घुसने पर रोक लगा दी गई। इस तरह, यूरोपियों के साथ जापान का पहला संपर्क लगभग एक सौ वर्षों तक ही सीमित रहा। फिर भी इस छोटे से अंतराल की विरासत ने जापान के आंतरिक विकास में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। "डच स्कालर" कहे जाने वाले कुछ विद्वानों ने एक ऐसे ज्ञान का विकास किया जिससे चीनी ग्रंथों के वर्चस्व पर सवालिया निशाल लगा गया। इन विद्वानों को "डच स्कालर" इसलिए कहा गया क्योंकि इन्होंने डच भाषा का अध्ययन किया और उस भाषा के माध्यम से पश्चिमी विज्ञान और सभ्यता के बारे में सीखा। उनका प्रभाव यद्यपि बहुत कम और केवल तोकुगावा काल के अधिकांश समय तक ही सीमित रहा, फिर भी उन्होंने तोकुगावा शासन के अंतिम वर्षों में उस समय महत्त्व हासिल कर लिया जब पश्चिमी राष्ट्र एक बार फिर जापानी तट पर प्रकट हुए।

8.2.1 आइबेरियाई अंतराल

सोलहवीं शताब्दी के मध्य में पुर्तगाली जापान में आए। उस समय जापान एकीकरण की प्रक्रिया से गुज़र रहा था। इस अर्थ में उस समय के जापान को राष्ट्र कहना अब भी उपयुक्त नहीं है। उस समय जापान पर कुछ शक्तिशाली क्षेत्रीय सामंत राज कर रहे थे, जिन्हें दाइम्यो करते थे। ये दाइम्यो अपनी सत्ता को सामुराई के माध्यम से चलाते थे। ओवारी प्रांत के सामंतों के बेटे ओदा नाबुनागा (1534-1582) ने अपने कौशल और शक्ति के बल पर जापान के एक बड़े हिस्से पर अपना अधिकार कर लिया था, और 1568 में जब उसने शाही राजधानी क्योतो में प्रवेश किया था, उस समय जापान का मध्य युग समाप्त हो गया था, यह कहा जा सकता है। एकीकरण की प्रक्रिया को उसके सेनापति हिदेयोशी ने आगे बढ़ाया, जिसने नोबुनागा की मृत्यु के बाद सत्ता हड़प ली थी। हिदेयोगी के बाद, सत्ता पर चतुर और चालाक तोकुगावा ईयेसु ने कब्जा कर लिया। ईयेसु को एक ऐसी शासन व्यवस्था कायम करने में सफलता मिली, जिसने जापान को लगभग ढ़ाई सौ वर्षों तक एक स्थायी राज दिया। जापान का पश्चिमी देशों के साथ प्रारंभिक संपर्क इस संदर्भ में हुआ।

यहाँ यह बता देना ठीक होगा कि यूरोपीय राष्ट्रों के साथ तो जापान का संपर्क बहुत कम समय के लिए और सीमित रहा, लेकिन अपने पूर्वी एशियाई पड़ोसियों के साथ इसके सपंर्कों का अनुभव लंबा रहा। जापानी सभ्यता के निर्माण के वर्षों में कोरिया और चीन का प्रभाव जापान को आधुनिक ढंग की संस्थाएं और दर्शन देने और ढालने में निर्णायक रहा (देखिए खंड 1) 14वीं शताब्दी में जापानी व्यापार, वाणिज्य और समुद्री लूटमार तक में सक्रिय रहे, और जापानी बस्तियाँ स्याम जैसे सूदूर क्षेत्रों में भी थीं।

यूरोपीय विस्तारवाद का इतिहास लंबा और जटिल है, लेकिन यहाँ हमारे लिये बस इतना जानना पर्याप्त होगा कि पोप द्वारा जारी एक विधेयक ने दुनिया को स्पेन और पुर्तगाल में बाँट दिया था पुर्तगाल को तो पूर्वी गोलार्ध में ईसाई धर्म फैलाने का अधिकार दे दिया गया और स्पेन को पश्चिमी गोलार्ध में। पुर्तगाल 1540 में इगनेशियस लोयोला ने जिस सोसायटी ऑफ जेसुइट्स की स्थापना की वह सबसे प्रभावशाली पंथ था। परिणामस्वरूप, जेसुइटों ने ईसाई धर्म को फैलाने में प्रमुख भूमिका निभाई और उन्होंने 1580 में फिलिप द्वितीय के नेतृत्व में

11. सेंट फ्रांसिस जेवियर (एक जापानी चित्रकार की कृति)

स्पेन और पुर्तगाल के एक हो जाने के बाद भी जापान पर अपना निर्द्वंद्व अधिकार बनाए रखा। इस एकाधिकार को फ्रांसिस्कन, डोमीनिकन और आगस्टीनियन पंथों ने पसंद नहीं किया। 1608 में जाकर ही जापान में काम कर रहे ईसाई पंथों के बीच प्रतिद्वंद्विता और प्रतिस्पर्धा को और बढ़ावा मिला। इस प्रतिद्वंद्विता का प्रभावी इस्तेमाल शासकों ने अपने हितों के पोषण के लिए किया।

यह जान लेना आवश्यक है कि पुर्तगाली मिशनों के साथ कई मिशन आए तो, फिर भी वे सभी पुर्तगाली नहीं थे। उदाहरण के लिए, फ्रांसिस जेवियर (1506-1552) नवारे का था जो उस समय फ्रांस का हिस्सा था, और विल एडम्स (1564-1620) ईयेसु के साथ काम करने वाला अंग्रेज़ एक डच जहाज इरेस्मस पर काम करता था।

जापान और यूरोपीय राष्ट्रों का संपर्क ऐसे दौर में हुआ, जब वाणिज्य और व्यापार की प्रतिद्वंद्विता गंभीर थी, और इसके आलावा जापान में ईसाई धर्म का जो संस्करण आया वह अत्यंत आक्रामक और कठोर किस्म का था। 1549 में फ्रांसिस जेवियर कागोशिमा में आया और उसने सतसुमा के तत्कालीन दाइम्यो की सहमति से ईसाई धर्म का प्रचार करना शुरू कर दिया। इसके विपरीत, जापान का धार्मिक वातावरण सहिष्णुता और शिंतों तथा बौद्ध धर्म व्यवस्थाओं के साथ-साथ रहने का वातावरण था व बौद्ध धर्म भारत से चीन और कोरिया के रास्ते आया था और यहाँ पहुंचते-पहुंचते उसमें परिवर्तन और रूपांतर भी हुए। जब ईसाई धर्म का प्रवेश हुआ तो उसे भी उसी रुचि और सहिष्णुता के साथ देखा गया। उसे इस रूप में नहीं देखा गया कि वह जापान के सामाजिक ढांचे या राजनीतिक सत्ता के लिए खतरा बनेगा। लेकिन यहाँ हमें याद रखना होगा कि जापान में ईसाई धर्म अकेला नहीं आया, क्योंकि इसके साथ व्यापार और वाणिज्य भी आए।

ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों और उनके द्वारा खड़ी की गई समस्याओं का गहरा संबंध व्यापार की इच्छा से है, और कभी-कभी एक को दूसरे से अलग करना कठिन हो जाता है। नोबुनागा से लेकर ईयेसु तक तमाम शासक ईसाई विचारों के प्रति उदार रहे और उन्होंने मिशनरियों के साथ अच्छा व्यवहार किया। कई दाइम्यों ने ईसाई धर्म अपना लिया। इसका एक बड़ा कारण व्यापार को आकर्षित करना था। जेसुइटों के प्रति नोबुनागा के सहानुभूतिपूर्ण रवैये का निर्धारण और उसके द्वारा बौद्ध और अन्य पंथों के दमन द्वारा भी हुआ। बौद्ध मठ ऐसे शक्तिशाली केंद्र हो गए थे जो अपनी निजी सेनाओं और बड़े भू-सम्पत्ति के बल पर राजनीतिक सत्ता का इस्तेमाल कर रहे थे। नोबुनागा के संरक्षण के कारण जेसुइटों को लोगों को ईसाई धर्म अपनाने के लिए प्रेरित करने में मदद मिली और 1582 तक ईसाई धर्म अपनाने वालों की संख्या 150,000 हो गई थी।

अगले शासक हिदेयोशी ने 1587 में ईसाई धर्म पर पाबंदी लगा दी और अनेक पुरोहितों तथा ईसाई धर्म अपनाने वाले जापानियों को प्राणदंड दे दिया। हिदेयोशी ने शायद ईसाई धर्म के राजनीतिक खतरों के डर से ऐसा किया। स्पेनी साधुओं और व्यापारियों ने भी पुर्तगालियों के विरुद्ध षड़यंत्र किया और अपनी शक्ति बढ़ाने का प्रयास किया। ईसाई धर्म अपनाने वालों को मारा तो गया, लेकिन यह यूरोप में धर्म को लेकर हुए दमन के मुकाबले में कुछ भी नहीं था। पाबंदी के बावजूद हिदेयोशी की रुचि यूरोपीय व्यापारियों को पूर्वी जापान में लाने में थी। यूरोपीय केवल पश्चिमी देशों के सामान का व्यापार लेकर नहीं आए। पुर्तगालियों ने चीन और जापान के बीच व्यापार में बिचौलियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे चीनी कपड़े, चीनी मिट्टी के बर्तन, दवाइयाँ, मसाले और सोना भी लेकर आए।

जब ईयेसु सत्ता में आया तो उसने भी व्यापारियों को इस बात के लिए प्रभावित करने का प्रयास किया कि वे इदो के निकट बंदरगाहों में आएं। उसका फिलीपीन में स्पेनियों के साथ संपर्क था, मिशनरियों को सहन तो किया जाता था, लेकिन उनके पंथों की प्रतिद्वंद्विता को लेकर संदेह बढ़ रहा था और यह डर भी कि वे अपने शासकों के हितों की पूर्ति कर रहे थे। यह समझ भी थी कि मिशनरियों के बिना भी व्यापार किया जा सकता था, और मिशनरियों पर पांबदी लगाने वाले फरमान 1606, 1607 और 1611 में जारी भी किए गए। लेकिन किसी विदेशी पुरोहित को प्राण दंड देने की पहली घटना 1617 में, ईयेसु की मृत्यु के बाद ही हुई।

ईयेसु की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी हिदेतादा ने ईसाइयों को प्रताड़ित करना शुरू किया। इसके पीछे यह शंका काम कर रही थी कि उनकी गतिविधियों से राजनीतिक स्थिरता को खतरा पैदा हो जाएगा। यूरोपीय लोग व्यापार के विशेषाधिकारों के लिए उग्र प्रतिस्पर्धा कर रहे थे, और एक-दूसरे के विरुद्ध अफवाहें और शंकाएं फैलाने से भी नहीं चूकते थे। 1622 में अधिकारियों को यह आशंका हुई कि स्पेनी रोमन कैथोलिक चर्च जापान पर आक्रमण की योजना बना रहा था ईसाई धर्म अपनाने वाले जापानियों की संख्या तो ज्ञात नहीं है, लेकिन ऐसा अनुमान है कि यह 3,00,000 तक पहुँच गई थी। बढ़ती शंका के कारण दमन भी बढ़ा और 1626 के बाद ईसाई धर्म भूमिगत हो गया।

आखिरी आघात 1637 में शिमाबारा विद्रोह होने के बाद लगा। इस क्षेत्र में ईसाई धर्म अपनाने वाले बड़ी तादाद में थे और गवर्नरी अधिकारी के लिए इस चुनौती को चौकन्ना होकर देखा गया। विद्रोही किसानों ने ईसाई नारे लगाए और हाथों में यीशु और मरियम लिखे झंडे थे। तोकुगावा गवर्नरी ने इसे एक राजनीतिक खतरे के रूप में देखा और इस विद्रोह को कुचल दिया। विद्रोह के बाद जो स्थिति बनी उसमें बौद्ध पुरोहित को "लोगों के मन-मस्तिष्क को शांत करने" को भेजा गया। अगले वर्ष, 1638 में, पुर्तगालियों को निकाल बाहर किया गया।

ईसाई धर्म के प्रति विरोध की भावना राजनीतिक अव्यवस्था के डर के कारण बनी। तोकुगावा गवर्नरी ने ईसाई मिशनरियों द्वारा दाम्यो को नैतिक और भौतिक समर्थन देकर प्रोत्साहित किए जाने के खतरे को देखा, जिससे राजनीतिक व्यवस्था की स्थिरता के लिए खतरा पैदा होता।

एक सिद्धांत के रूप में ईसाई धर्म को प्रचलित धर्मों या पंथों के साथ मिल जाना भी कठिन लगा। शुरुआत में तो मिशनरी बौद्ध धर्म के ही एक और पंथ के रूप में आए थे। उदाहरण के लिए, जेसुइटों ने बुद्ध वैरोकन के लिए "दाइनीची" शब्द का इस विश्वास के साथ इस्तेमाल किया कि इसका अर्थ सर्वोच्च देव होता था। धीरे-धीरे बेशक ईसाई धर्म की समझ बढ़ी, लेकिन इसमें बौद्ध धर्म और अन्य स्थानीय धर्मों के प्रति जो असहिष्णुता थी, उससे इसके लिए यहाँ के लोगों मे स्वीकार्य होना कठिन हो गया।

पुर्तगालियों और स्पेनियों के साथ व्यापार बढ़ाने की गरज से डच भी शामिल हो गए। डचों द्वारा नियुक्त विल एडम्स ईयेसु का कृपा पात्र बन गया, और इस स्थिति का इस्तेमाल उसने कैथोलिक ताकतों के विरुद्ध प्रोटेस्टेंट राज्यों की शंका को आगे रखने के लिए किया। अंग्रेज़ भी दूसरी ताकतों के साथ प्रतिद्वंद्विता में थे। ईसाई धर्म में व्याप्त समस्याओं और इन प्रतिद्वंद्विताओं के कारण तोकुगावा ने ईसाई धर्म को धीरे-धीरे सीमित कर दिया और अंत में निषिद्ध कर दिया। 1629 में सभी स्पेनियों को देश निकाले का आदेश दे दिया गया और कई को प्राणदंड दिया गया। 1637 में होने वाले शियाबारा के किसान विद्रोह ने, जिसमें अनेक ईसाई थे, ईसाई-विरोधी नीतियों की भयंकरता को बढ़ा दिया। अंग्रेज़ी व्यापार केंद्र 1623 से पहले-पहले बंद हो गया था, और 1640 आते-आते कुछ ही व्यापारी रह गए थे। बेशक चीनी व्यापारी तो थे ही।

8.2.2 सकोकू

तोकुगावा ने पृथकता की जिस नीति का पालन किया, उसे "सकोकू" या बंद देश के नाम से जाना जाता है और इस बात को समझाने के लिए कई स्पष्टीकरण दिए गए हैं कि तोकुगावा ने विदेशियों के प्रवेश पर पाबंदी क्यों लगाई और जापानियों को जापान छोड़ने से क्यों रोका। उन्होंने जहाज़ों का आकार भी सीमित कर दिया कि उनमें यात्राएं न की जा सकें। आम तौर पर यह तर्क दिया जाता है कि तोकुगावा को ये कदम इसलिए उठाने पड़े क्योंकि वे रोमन कैथोलिक पंथ को समाप्त करना चाहते थे जो सामाजिक तौर पर एक अव्यवस्थित करने वाला और राजनीतिक तौर पर खतरनाक सिद्धांत था। कैथोलिक लोगों की निष्ठा पोप के प्रति थी और उससे शोगुन (गवर्नर) की सत्ता को खतरा हो सकता था। एक दूसरा स्पष्टीकरण यह दिया जाता है कि तोकुगावा व्यापार पर एकाधिकार करना चाहते थे और यूरोपीय व्यापारी अपने व्यापार को नागासाकी के बंदरगाहों से हटाकर तोकुगावा की राजधानी इदो के आसपास ले जाने के लिए राजी नहीं थे।

फिर भी, इन स्पष्टीकरणों में इस तथ्य को अनदेखा कर दिया गया है कि तोकुगावा के उनके एशियाई पड़ोसियों चीन और कोरिया के साथ राजनीतिक और व्यापारियों संबंध बने रहे। विदेशी व्यापार का इंतजाम दाइम्यो के हाथों में था और यह गवर्नर का एकाधिकार नहीं था। इस तरह त्सुशिमा के दाइम्यो ने कोरिया के वाइग्वान स्थान में एक स्थायी कारखाना 1611 से मेजी काल तक चलाया। रोनाल्ड टोबी जैसे विद्वानों का तर्क है कि तोकुगावा की पृथकता की नीति एक व्यापकतर विदेशी नीति का एक अंग थी जिसमें तोकुगावा शासन की वैधता और प्रभुसत्ता को मज़बूत और पुष्ट करने तथा उसकी सुरक्षा को अधिक से अधिक सुनिश्चित रखने का उद्देश्य सामने था। तोकुगावा अपनी स्थिति को व्यक्त करने लगे और उसी के साथ-साथ उन्होंने चीन केंद्रित विश्व व्यवस्था से भी नाता तोड़ लिया। उन्होंने चीन के साथ संबंधों को सामान्य करने के पहले के प्रयासों को छोड़ दिया और 1635 आते-आते गवर्नर "जापान के महान युवराज" की उपाधि का इस्तेमाल करने लगा था। यूरोपीय ताकतों का निष्कासन एक व्यापकतर विदेशी नीति का केवल एक पहलू था। वास्तव में "सकोकू" शब्द का इस्तेमाल 1630 के दशक में कभी नहीं हुआ। इसका सबसे पहले इस्तेमान 1858 में ही हुआ।

8.2.3 डच वातायन

डच व्यापारियों को नागासाकी के तट पर एक कृत्रिम द्वीप दोशिमा से अपना व्यापार जारी रखने की अनुमति मिल गई थी। इस छोटे से व्यापार केंद्र ने जापानियों के लिए पश्चिमी दुनिया की ओर एक वातायन (खिड़की) का काम किया। व्यापार इतना महत्त्वपूर्ण नहीं था, जितने कि वहाँ आने वाले विचार जिन्होंने "रंगकुश" या डच विद्वानों को प्रेरित किया। इन अध्ययनों को आठवें गवर्नर योशिमुने की ओर से सरकारी प्रोत्सान मिला, और अराई हाकुसेकी (1657-1725), सुगिता गेनयाकु (1732-1818) और हिरागा गेनाई (1726-1779) जैसे जाने-माने विद्वानों ने महत्त्वपूर्ण काम किए, जिससे वैज्ञानिक विचारों को प्रसार मिला। इन विद्वानों ने बहुत कठिनाई और मेहनत से डच भाषा सीखी क्योंकि देशिमा में डचों के साथ संपर्क न के बराबर था और उन्हें अपने शब्दकोश स्वयं बनाने पड़े। उनमें से कई तो डाक्टर थे, जिन्होंने शरीर विज्ञान और चीर-फाड़ के बारे में यूरोपीय कृतियों से सीखा। खगोलशास्त्र, भूगोल और सैन्य विज्ञान भी ऐसे कुछ विषय थे, जिनपर उन्होंने अपनाा ध्यान लगाया। उन्होंने केवल अमूर्त सिद्धातों को ही नहीं, बल्कि ऐसे ज्ञान को हासिल करने का प्रयास किया, जो व्यावाहारिक हो।

इन विद्वानों की मुख्य विशेषता यह थी कि वे लोगों की ज़िंदगियों को सुधारने के इच्छुक न होकर राष्ट्रीय शक्ति के प्रति अधिक चिंतित थे। डच अध्ययनों ने पश्चिमी ज्ञान को मिटाकर गवर्नर और दाइम्यो को व्यावहारिक मदद दी। जापान के पश्चिम देशों के साथ प्रारंभिक संपर्क के साथ आग्नेयास्त्र (हथियार) आए थे, बंदूकों ने 1575 की नागाशीनो की लड़ाई में निर्णायक भूमिका निभाई थी, जो पहले पुर्तगालियों के आने के केवल बत्तीस वर्ष बाद हुई थी। बाद में हिदेयोशी ने कोरिया पर आक्रमण के समय आग्नेयास्त्रों का सफल इस्तेमाल किया। डच विद्वान यूरोप के इस संपर्क की अकेली देन नहीं थे। ईसाई धर्म सरकारी तौर पर प्रतिबंधित होते हुए भी छोटे-छोटे समूहों ने इस धर्म को मानना जारी रखा। गुप्त ईसाई कहे जाने वाले इन लोगों ने अपनी प्रार्थना जारी रखने के अनेक तरीके निकाल लिए।
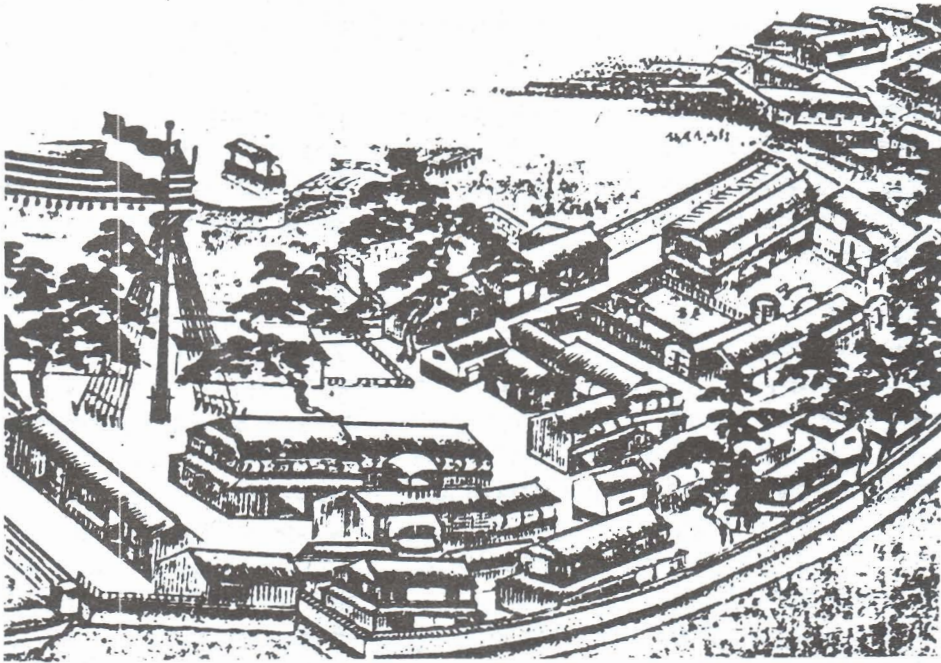
12. एक डच बस्ती (नागासाकी)

8.3 जापान के तट पर काले जहाज़

तोकुगावा समाज, अपनी गतिशीलता के बावजूद, यूरोप में होने वाले विकासों से कटा हुआ था और जब विदेशी जहाज़ आने लगे तथा जापानी बंदरगाहों पर पहुंचने की मांग करने लगे तो इसके लिए गंभीर समस्या उठ खड़ी हुई। 17वीं शताब्दी के दौरान जापान की सैनिक क्षमताएं पुर्तगालियों या अंग्रेज़ों की सैनिक क्षमताओं से बहुत भिन्न नहीं थी, लेकिन 19वीं शताब्दी तक यूरोपीय राष्ट्रों ने जापान में अकल्पनीय तरीकों से विकास कर लिया था। एक बड़ी उपनिवेशीय ताकत के रूप में इंग्लैंड के उदय और अफ्रीका तथा एशिया तक इसकी ताकत के प्रसार के बारे में तोकुगावा को बहुत कम जानकारी थी और उन्हें पश्चिमी राष्ट्रों द्वारा पैदा किए गए खतरे से सफलतापूर्वक निपटाने में अपनी असमर्थता की भी जानकारी नहीं थीं।

उन्नीसवीं शताब्दी में पश्चिमी देशों के सपंर्क ने तोकुगावा के लिए नई समस्याएं खड़ी कर दी थीं, और उसके पास इन समस्याओं से निपटने के साधन नहीं थे। साम्राज्यवादी घुसपैठ बाकुफु के पतन का एक महत्वपूर्ण कारण बन गई क्योंकि उसने कई महत्वपूर्ण बिंदुओं पर बाकुहन व्यवस्था पर प्रहार किया। इससे यह स्पष्ट हो गया कि बाकुफु पृथकता की नीति तो लागू कर सकती थी, लेकिन यह किसी बदलाव की शुरुआत नहीं कर सकती थी। जापान में किसकी सत्ता चलेगी यह सवाल वहाँ की आंतरिक समस्याओं के कारण खड़ा हुआ था, लेकिन पश्चिमी घुसपैठ से तनाव और भी बढ़ गया तथा इन मुद्दों का समाधान आवश्यक हो गया। यूरोपीय ताकतों के आने से बाकुफु से असंतुष्ट गुटों को तोकुगावा शासन के विरुद्ध एकजुट होने का मौका मिल गया।

जापान के पश्चिमी देशों के साथ संपर्क का रास्ता अमेरिका ने खोला, जब कमोडोर मैथ्यू पेरी 1853 में आया और अगले ही वर्ष उसे संधि का वचन मिल गया। 1858 में, अमेरिका की ओर से वकालत करने वाले टाउनसेंड हैरिस ने एक संधि की, जिससे व्यापार और वाणिज्य के लिए जापान के द्वार खुल गए। इससे पहले शुरू हुई एक प्रक्रिया का समापन हो गया। रूसी और ब्रिटिश 17वीं शताब्दी से जापान के तट पर दबाव बना रहे थे। रूसियों ने ओखोत्स्क (okhotske) सागर में अपने आपको स्थापित कर लिया था और यहाँ से उन्होंने अभियान

यात्राएं कीं। 1739 में एक रूसी खोजकर्ता स्पानबर्ग ने जापान के लिए एक रास्ता खोजा। उसके बाद जापान के द्वार खोलने और संबंदा स्थापित करने के गंभीर प्रयास हुए। 1792 में लेफ्टिनेंट लक्ष्मण होकैहो में गया लेकिन वह कोई रियायतें नहीं ले सका। अगला दूत नागासाकी गया। नागासाकी ऐसा अकेला बंदरगाह था, जहां विदेशियों को आने की छूट थी, लेकिन जापानियों की विदेशी व्यापार में दिलचस्पी नहीं थीं। 1806 और 1807 में रूसियों ने सखालिन और कुरील द्वीपों में जापानी बंदरगाहों पर छापे मारे, जिसके कारण दोनों देशों के बीच तनाव और टकराव के हालात बन गए।

ब्रिटिश अथवा अंग्रेज़ 17वीं शताब्दी से ही इस क्षेत्र की टोह लेने का प्रयास कर रहे थे। कप्तान कुक 1793 में अपनी मृत्यु के समय जापान जाने की ही योजना बना रहा था। 1793 में मैकार्टनी के नेतृत्व में चीन जाने वाला दल भी जापान नहीं जा पाया, जबकि इसकी योजना थी। 1797 में एक अंग्रेज़ी जहाज़ होकैडो गया और 1808 में जंगी जहाज़ फेटन ने नागासाकी में प्रवेश किया।

व्हेल के शिकार और चीन के साथ व्यापार में रुचि होने के कारण अमेरिका जापानी बंदरगाहों को विदेशी व्यापार के लिए खोलने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाना शुरू कर रहा था। व्हेल का शिकार करने वाले जहाज़ों ने नागासाकी और ऐसे दूसरे बंदरगाहों पर डेरा डाला था, जो डचों के लिए अनुबंधित थे, जिनके अपने जहाज़ नैपोलियन की जंग में खो चुके थे। लेकिन तूफानों के समय रसद और शरण लेने की आवश्यकता के कारण इन जहाज़ों के लिए एक स्थायी व्यवस्था करना अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो गया। 1840 के दशक तक अमेरिका में पश्चिम की ओर प्रसार या विस्तार के साथ-साथ स्पष्ट नियति के विचार भी आए। चीन में अमेरिकी व्यापारियों के पहुँच बनाने के प्रयास असफल साबित हुए और सरकार जापान में दिलचस्पी लेने लगी। 1835 से राजनयिक इंतजाम बनाने के प्रयास किए गए। 1846 में कमोडोर बिडिल इदो आया, लेकिन उसे घुसने की अनुमति नहीं मिली। उसके बाद कमांडर ग्लिन 1849 में नागासाकी गया, लेकिन उसने व्यापार जारी रखने के लिए कोई इंतजाम नहीं किया।

बोध प्रश्न 1

1) जापान ने पृथकता की नीति क्यों अपनाई? लगभग पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

2) उन्नीसवी शताब्दी में पश्चिमी देशों के साथ संपर्क के कारण तोकुगावा को किन समस्याओं का सामना करना पड़ा? लगभग पाँच पंक्तियाँ में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

3) अमेरिका ने जापान के द्वार खोलने के लिए क्या-क्या प्रयास किए?

....

....

....

....

....

8.4 बाहरी दबाव और आंतरिक बहस

पश्चिमी ताकतों के साथ राजनयिक और वाणिज्यिक संबंधों को सम्पन्न करने के लिए जापान

पर बनने वाले दबाव ने बाकुफू को एक कठिन स्थिति में डाल दिया। प्रारंभिक प्रतिक्रिया यह रही कि कठोरता से पृथकता की नीति का पालन किया जाए। 1806 में स्थानीय अधिकारियों को एक आदेश जारी किया गया कि वे विदेशियों को बाहर रखे। बाद में इसे कठोर कर दिया गया और अधिकारियों से कहा गया कि तट के पास आने वाले किसी भी जहाज़ को नष्ट कर दें, बर्बरों को बाहर रखा जाए और जापान की अखंडता को बरकार रखा जाए। लेकिन यह कहना ही होगा कि इस समस्या की प्रतिक्रिया जटिल थी। एक ओर जापानी पश्चिमी राष्ट्रों को बाहर रखने में स्पष्ट तौर पर असमर्थ थे, और दूसरी ओर अधिकांश गुट इस बात पर अड़े थे कि सकोकू बंद देश की नीति में कोई ढील नहीं होनी चाहिए।

आने वाले वर्षों में इन दो धाराओं में टकराव देखने में आया। एक के अनुसार जापान को बंद देश रहना चाहिए और दूसरी के अनुसार विदेशियों को स्थान दिया जाना चाहिए, अर्थात् उसे खुला या मुक्त देश (काईकोकू) होना चाहिए था। ये दोनों स्थितियां जापान में वैध शासक के रूप में बाकुफू को समर्थन देने या वास्तविक वैध शासक के रूप में शाही घराने की शक्ति को फिर से ज़ोर देने के सवाल से जुड़ी थी । जो लोग बकुहन व्यवस्था से असंतुष्ट थे उन्होंने सोन्नो-जोई, अर्थात् "सम्राट का सम्मान करो और बर्बरों को निष्कासित करो" की नीति के लिए आग्रह किया। इस नीति की बौद्धिक जड़ें उन दार्शनिक सिद्धातों में थीं, जिनमें यह तर्क दिया गया था कि जापान की विलक्षणता इसलिए बनी क्योंकि उसका सम्राट सूर्य देवी का सीधा वंशज था। यह विलक्षणता और जापान की राजनीतिक तथा सांस्कृतिक व्यवस्था में सम्राट की स्थिति को उन विद्वानों ने और मज़बूत किया, जो जापान की मिथकीय बुनियाद पड़ने के समय से ही जापान का इतिहास लिख रहे थे। इन सिद्वातों की उन गुटों में सहानुभूतिपूर्ण प्रतिक्रिया हुई, जिन्हें बकुहन व्यवस्था के अंदर काम करना और भी कठिन लग रहा था।

आईजावा सीशीसई (1782-1863) और फ्यूजिता तोको (1806-1855) जैसे बुद्धिजीवियों ने विदेशियों को जापान में प्रवेश की अनुमति देने के विरोध में तर्क तैयार किया। फिर भी, उन्होंने पश्चिमी तरीकों का इस्तेमाल करके जापान की शक्ति को बढ़ाने का प्रयास किया। पश्चिमी देशों के तकनीकी निर्माणों का इस्तेमाल जापान की अखंडता की रक्षा करने और उसे बरकरार रखने के लिए किया गया। बाकुफु के अंदर से भी सुधार के लिए आवाज़ें उठीं।

कई वर्षों के दौर मे बाकुफु की आर्थिक हालत बिगड़ी थी और बीच-बीच में होने वाले सुधार प्रभावी नहीं रहे थे। 1841-1843 से बाकुफु में ज्येष्ठों के सबसे बड़े पद के अध्यक्ष मिजिनों तादाकुनी ने "टेम्पो सुधार" लागू किए थे। उसे उसके पद से हटा दिया गया और उसका उत्तराधिकारी आबे मसाहीरो 1857 में अपनी मृत्यु के समय तक बाकुफु की नीति को निर्धारित करने वाला प्रमुख व्यक्ति रहा। आबे इस पक्ष में था कि जिन दाइम्यो को सरकारी परिषदों से बाहर रखा गया था उन्हें भी इसमें शामिल किया जाए। यहाँ तक कि मीतो का दइम्यो, और तोकुगावा परिवार का एक प्रभावशाली सदस्य, तोकुगावा नारी आकी थी प्रमुख दाइम्यो के व्यापक आधार वाले समर्थन के पक्ष में था।

कौन-सी नीति का पालन किया जाए, इस पर बाकुफु में आम सहमति नहीं थी, बल्कि अनेक मतभेद थे। डच विद्वानों की विशेषता का इस्तेमाल करते हुए बाकुफु ने पश्चिमी किताबों का अध्ययन करने के लिए एक विद्यालय की स्थापना की और 1857 तक वह विद्यालय बर्बर पुस्तक अनुसंधान संस्थान बन गया। चीन में, और एशिया के दूसरे हिस्सों में, पश्चिमी राष्ट्रों की गतिविधियों की जानकारी रखने वाले कई डच विद्वान सुधार के उपायों के पक्ष में थे। उनमें विदेशी खतरे से निपटे के लिए तोकुगावा की सैनिक क्षमताओं को सुधारना विशेष तौर पर महत्त्वपूर्ण था। उहाहरण के लिए, 1784 में ही हयाशी शीहेई (1738-1793) ने "एक समुद्रवर्ती राष्ट्र की सैनिक समस्याओं की चर्चा" का प्रकाशन किया था, जिसमें व्यापक सैनिक सुधारों की वकालत की गई थी।

तोप विद्या और दूसरे पश्चिमी विषयों का अध्ययन करने वाले एक प्रभावशाली विद्वान, सकुमा शोज़ान (1798-1866) ने "पूर्वी नैतिकता और पश्चिमी विज्ञान" का नारा बनाकर दिया। इसमें यह नहीं समझा गया कि विचार कुछ निश्चित सांस्कृतिक स्थितियों से बनते हैं, और पश्चिमी तकनीकों या तराकों का प्रभाव निश्चित रूप से जापानी मूल्यों पर पड़ेगा। इस नारे में जापानी कमज़ोरी को तो माना गया था, लेकिन इस तरह के विचार उस समय तक भी राजनीतिक दृष्टि से प्रभावहीन थे। यह विचार हर ओर व्याप्त था कि विदेशियों को बाहर रखा जाना चाहिए; कि व्यापार हानिकारक होगा और संकट से निपटने के लिए राजनीतिक व्यवस्था में बदलाव आवश्यक था।

8.4.1 पेरी का आगमन

सन् 1853 में कमोडोर मैथ्यू पेरी चीन और ओकीनावा होता हुआ जापान आया। वह भाप से चलने वाले दो जंगी जहाज़ों और दो अन्य जहाज़ों का अपना बेड़ा लेकर जुलाई 1853 में इदो की खाड़ी में दाखिल हुआ। पेरी अमेरिका के राष्ट्रपति का एक पत्र साथ लाया था। पेरी ने जिस उद्दंडता का व्यवहार किया, उससे तोकुगावा बाकुफु की पश्चिमी राष्ट्रों की ताकत से प्रभावी ढंग से निपटने की अक्षमता व्यक्त होती है। जापानी बंदरगाहों को खोला जाए या नहीं, यह सवाल माहन दाइम्यो और शाही दरबार के सामने रखा गया। यह एक अभूतपूर्व कार्यवाही थी, लेकिन तोकुगावा इनके समर्थन के बिना कोई नीति लागू करने की स्थिति में नहीं थे। 1853 से 1868 तक का समय जब तोकुगावा बाकुफु की जगह मेजी सरकार ने ले ली थी, गंभीर बहसों और तेज बदलावों का समय रहा। विभिन्न गुटों की स्थिति लगातार बदल रही थी और खुले (या मुक्त) देश या बंद देश के समर्थकों को निश्चित गुटों में देखने के बजाय उन्हे विदेशी खतरे से निपटने के लिए प्रयुक्त नीतियों के प्रतीक के रूप में देखना बेहतर है।

सन् 1854 में, पेरी और भी अधिक ताकत के साथ आया और बातचीतों के बाद मार्च 31, 1854 को कानागावा की संधि हुई। इस संधि ने शिमोदा और हकोदाते के बंदरगाहों को खोल दिया वहाँ अमेरिकी जहाज़ अपने जहाज़ों के लिए ईंधन और सामान ले सकते थे। इस संधि में एक राष्ट्रीय प्रावधान जिसके तहत किसी और देश को मिलने वाले लाभ अपने आप उसे मिल जाने थे। अमेरिका को शिमोदा में एक वाणिज्यदूतीय प्रतिनिधि रखने की भी छूट मिल गई। यह संधि एक छोटा कदम था, क्योंकि खोले जाने वाले बंदरगाह छोटे और दूर स्थित थे। लेकिन यह बाकुफु की पहले की पृथकता की नीति से हटकर था।

पेरी ने जब अपनी संधि की तो रूसी भी उस समय सक्रिय थे। पुतियातिन संधि करने और होकैडो के उत्तर में सीमा निशिचित करने की कोशिश कर रहा था, लेकिन उसे सफलता नहीं मिली। अक्तूबर में बाकुफु ने अंग्रज़ों के साथ और फिर रूस के साथ भी एक ऐसी ही संधि की जिसमें नागासाकी को भी खोल दिया गया। 1855 में डचों ने भी जापानियों के साथ एक संधि की।

अमेरिका ने अपने वाणिज्यदूत की हैसियत से टाउनसैंड हैरिस को 1856 में शिमोदा में रहने के लिए भेजा। यहाँ उसे बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। लेकिन उसने धैर्य और युक्ति के साथ बाकुफु को समझा ही लिया कि अमेरिका के साथ संधि करके वे फायदे में ही रहेंगे, नहीं तो उन्हें दूसरी पश्चिमी ताकतों के साथ और भी दूभर संधियां करनी पड़ेंगी। जुलाई 29, 1858 को हुई हैरिस संधि ने कानागावा और नागासाकी के बंद्रगाहों को, और चरणों में नीगाता और हयोगो को, खोल दिया। विदेशियों को ओसाका और इदो में रहने की छूट मिल गई और उन्हें क्षेत्र से बाहर के विशेषाधिकार भी मिले। अंत में, दोनों देशों के प्रतिनिधियों की अदला-बदली का प्रावधान संधि में था। दूसरे राष्ट्रों के साथ भी ऐसी संधियाँ हुईं। बंदरगाहों को खोलने के आलावा, जापानियों ने एक बड़ी रियायत यह दी कि उन्होंने आयात और सीमा-शुल्क की दरों को बहुत नीचा रखा।

8.4.2 परिणाम

विदेशी ताकतों को रियायतें देने की बकुफु की नीति से आंतरिक विरोध बढ़ रहा था। आबे मसाहीरो ने संधि के लिए सम्राट की अनुमति ले ली थी और महान दाइम्यो को बकुफु की परिषदों में शामिल कर लिया था, लेकिन जो लोग बहुत पहले से सरकार पर नियंत्रण रखते आए थे उन्होंने उसका विरोध किया। ज्येष्ठों की परिषद का अगला अध्यक्ष, होता मामायोशी, बाहरी दाइम्यो को साथ लेने के पक्ष में नहीं था, वह विदेशी ताकतों को व्यापार के अधिकार देने की नीति का समर्थक था।

होता ने न केवल एक संपूर्ण वाणिज्यिक संधि के लिए दाइम्यो का समर्थन हासिल करने की कोशिश की, बल्कि वह सम्राट से अग्रिम सहमति प्राप्त करने के लिए क्योतो भी गया। लेकिन 1858 में दरबार ने कुछ दाइम्यों के विरोध के कारण कोई स्पष्ट जवाब नहीं दिया। 1858 में ली नाओसूके "ताइरो" बन गया, जो बकुफु सरकार के अंदर सबसे ऊंचा पद था और उसने गवर्नरी के अधिकारों को फिर से इस्तेमाल करने की कोशिश की। उसने शाही दरबार की अनुमति के बिना ही वाणिज्यिक संधि पर हस्ताक्षर कर दिए और इस विवाद का भी निपटारा कर दिया कि गवर्नरी का वारिस कौन होगा। गवर्नर के कोई संतान नहीं थी और वह कमजोर था, जिसके परिणामस्वरूप मीतो का दाइम्यो अपने बेटे काईकी को वारिस

13. कमोडोर पेरी के अधिकारी गण

i) कैप्टन एडम्स

ii) कैप्टन एबट

iii) पेरी का पुत्र

iv) पेरी

v) विलियम

vi) पोर्टमैन
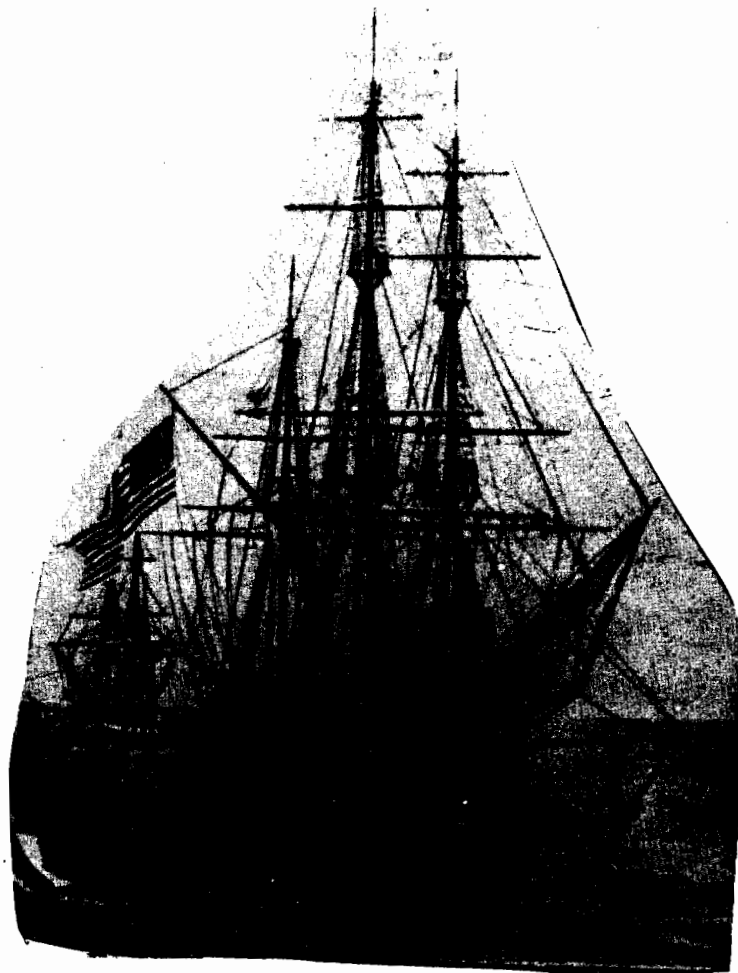
14. पेरी का जहाज़ी बेड़ा
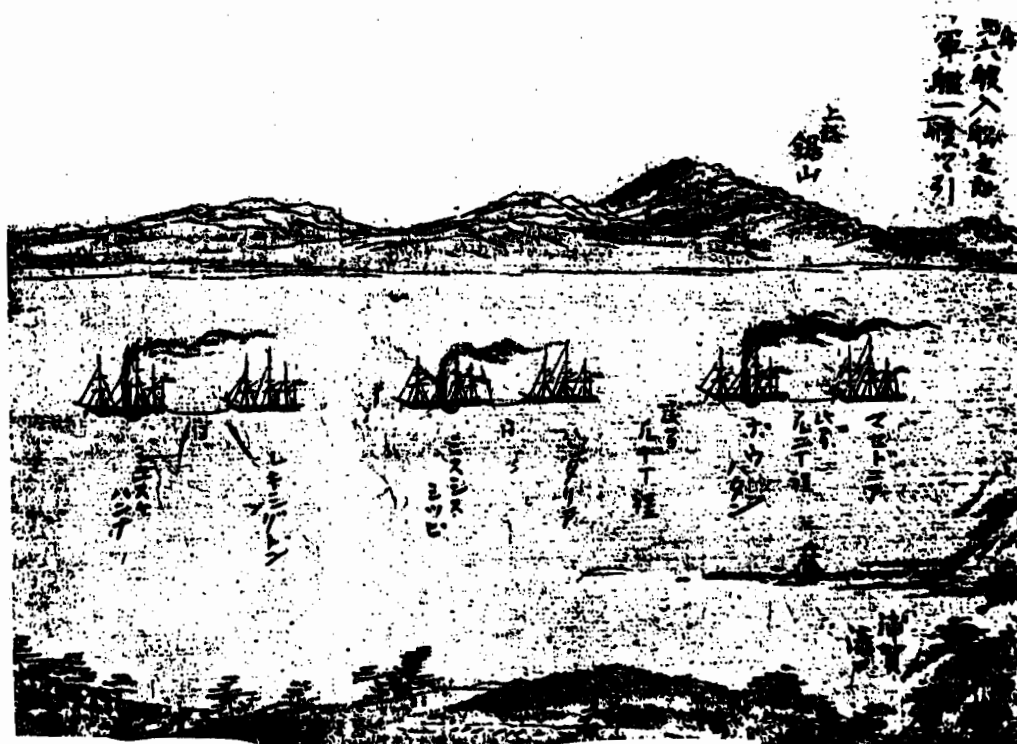
15. पेरी के जहाज़ों का एक जापानी चित्र

बनाना चाहता था, और काइको क्योंकि हितोत्सुबाशी परिवार का दत्तक था, इसलिए उसका दावा जायज़ था। उसके दावे का समर्थन शाही दरबार ने किया और यह एक नई बात थी क्योंकि पहले कभी दरबार ने बकुफु के मामलों में अपने को नहीं डाला था। ली नाओसुके ने वाकायामा के दाइम्यो को वारिस नियुक्त करवा लिया ताकि बकुफु का अधिकार व्यक्त हो।

यहां यह बताना प्रासंगिक होगा कि दत्तक बनाना या गोद लेना जापान में आम रीति थी और रक्त संबंधों की अधिक अहमियत नहीं थी। इस तरीके से सामाजिक स्थिति को बेहतर किया जा सकता था। इस तरह एक "निचली स्थिति" की स्त्री को कोई "ऊंची स्थिति" वाला दत्तक बना सकता था और फिर उसका विवाह समान ऊंची स्थिति वाले के साथ हो सकता था। व्यापारिक घराने अपने बेटों के अक्षम होने की स्थिति में अक्सर सक्षम क्लर्कों को आधिकारिक वारिस के रूप में दत्तक बना लेते थे।

नाओसुके के कामों की सम्राट के समर्थकों में प्रतिक्रिया हुई, लेकिन वह इससे कड़ाई से निपटा। आनसेई अभियान में नाओसुके ने हितोत्सुबाशी पार्टी में शामिल लोगों को सज़ा दी, और इससे मार्च 1860 में उसकी हत्या कर दी गई। नाओसुके की मृत्यु बकुफु के लिए आघात थी, लेकिन उससे भी अधिक हानिकारक थी दरबार और दाइम्यो की बढ़ती ताकत। शाही दरबार के आसपास बकुफु का विरोध होने लगा, इसका नेतृत्व सत्सुमा और चोशु के बाहरी हान ने किया। कई सामुराई क्योतो के आसपास इकट्ठे हो गए, और इन स्वामीहीन सामुराइयों या रोनिन ने शाही दरबार के आसपास एक लड़ाकू गुट बना लिया।

आनसेई अभियान को एक ऐसा राजनीतिक ढांचा तैयार करने की कोशिश में तो सफलता मिली, जिसमें बकुफु को प्रबल राजनीतिक शक्ति होना था, लेकिन जिसमें असंतुष्ट तत्वों और शाही दरबार को भी शामिल किया जाना था। निष्ठावान तत्व इससे बेशक गुस्सा हुए और ऐसा माहौल बन गया जिसमें बदले और लड़ाई की बात आम हो गई। नाओसुके के वारिस ने इदो और क्योतो के बीच संबंध सुधारने की कोशिश की। गवर्नर इमोची और शाही राजकुमारी काजुनोमिया का विवाह दरबार और बकुफु की इस निकटता की अभिव्यक्ति थी। बकुफु ने 1862 में यूरोप में एक मिशन भी भेजा, जिसने अंग्रेज़ों और फ्रांसीसियों को इस बात के लिए मना लिया कि वे ह्योगो और नीगाता में व्यापार शुरू करने को स्थगित कर दें।

फिर भी, बकुफु को शासक के रूप में मान्यता तो प्राप्त थी। लेकिन उसकी स्थिति कमज़ोर थी। इसलिए चोशु के हान ने अपनी मांगे मनवाने के लिए पहल कर दी। नाओसुके के उत्तराधिकारी आंदो नोबुयुकी को निष्ठावान तत्वों ने तो मार ही डाला और उसकी कोशिशें वहीं समाप्त हो गई। 1862 का वर्ष एक निर्णायक मोड़ था, क्योंकि यहां से बकुफु का वर्चस्व जाता रहा और वह वर्चस्व के लिए होड़ करने वाली एक शक्ति बन गया। धीरे-धीरे इसकी पहल चोशु के हाथ में आ गई जिसने अपनी शक्ति और स्थिति को जताना और मांगे रखना शुरू कर दिया। क्योतो पर चोशु का नियंत्रण हो गया और गवर्नर को वहां आने को मना लिया गया और उसने जून 25, 1863 से विदेशियों के निष्कासन का आदेश जारी कर दिया। आदेश का पालन चोशु ने करवाया, उसके अमेरिका, फ्रांस और हालैंड के जहाज़ों पर बम गिरवाए। अमेरिका और फ्रांस ने बदले की कार्यवाही की।

बकुफु के दूसरे मुख्य प्रतिद्वंदी सत्सुमा ने विद्रोह कर दिया और आइज़ु के हान की मदद से चोशु के हाथों से क्योतो और शाही दरबार का नियंत्रण अपने हाथों में ले लिया। चोशु ने बदले की कार्यवाही की, लेकिन वह क्योतो को वापस लेने में कामयाब नहीं हुआ। इसके अलावा, विदेशी जहाज़ों पर इसके हमलों के कारण अमेरिकी, फ्रांसीसी, अंग्रेज़ी और डच सेनाओं के एक मिले-जुले बेड़े ने चोशु पर आक्रमण कर दिया और 30 लाख डालर हर्जाने की मांग की। इस ऊंची मांग का इस्तेमाल और अधिक विशेषाधिकार हासिल करने के लिए किया गया, और जून 1866 में शुल्क दरें 20 प्रतिशत से 5 प्रतिशत पर आ गईं।

इससे पहले सत्सुमा में सितम्बर 14, 1862 को एक अंग्रेज़ नागरिक रिचर्डसन को मार डाला गया। इस घटना को नामामुगी प्रकरण के रूप में जाना जाता है क्योंकि यह घटना नामामुगी गांव के पास घटी थी और बकुफु को 100,000 पौंड का हर्जाना देना पड़ा था। ब्रिटेन की धमकियों के बाद सत्सुमा को भी 25,000 पौंड देने पड़े।

सन् 1864 में बकुफु चोशु को नियंत्रण में करने में लगा था, लेकिन अगस्त 15, 1866 में इसने जो दूसरा अभियान शुरू किया वह नाकामयाब रहा। इस प्रसंग में विदेशी आक्रमण और भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाना शुरू कर रहे थे। 1853 से लगभग 1865 तक जापानी क्षेत्रों में साम्राज्यवाद की लगातार घुसपैठ हो रही थी और वह जापान की सामाजिक प्रक्रिया

में शामिल हो रहा था। लेकिन 1865 के बाद इस प्रवृत्ति ने खतरनाक रूप धारण कर लिया और साम्राज्यवाद जापानी प्रभुसत्ता के लिए एक भयंकर खतरा बन गया। जापान के उत्तर में रूसी विस्तार पहले ही एक समस्या बना हुआ था, और 1865 के बाद बकुफु में यह चिंता बनने लगी कि रूसी साखालिन और काराफुतो में अपने दावों का विस्तार कर रहे थे।

देश के अंदर बढ़ती हुई फूट की स्थिति में पश्चिमी ताकतों ने 1866 का शुल्क दर समझौता किया। इसका निर्देशन मुख्य रूप से ब्रिटिश मंत्री सर हैरी पार्क्स ने किया था, और कॉनरैड टॉटमैन के शब्दों में यह "एक ठोस बुनियाद थी जिसपर जापान में एक व्यापक और स्थायी शाही वाणिज्यिक स्थापना को खड़ा करना था।"

8.5 जापान में आंग्ल-फ्रांसीसी प्रतिद्वंद्विता

अब तक तो यह जापान और विदेशियों का मसला था, लेकिन जल्दी ही आंग्ल-फ्रांसीसी प्रतिद्वंद्विता ने जापानी मामलों में हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया। इस स्थिति में फ्रांसीसी बकुफु की ओर आकर्षित हुए और अंग्रेज़ों ने सत्सुमा और चोशु का समर्थन किया। फ्रांसीसियों ने दूसरी पश्चिमी ताकतों के साथ मिलकर काम करने के बजाय एक स्वाधीन फ्रांसीसी नीति का पालन करना शुरू किया। योकोसुका में एक बड़ा जहाज़ कारखाना बनाने के लिए ऋण देने का निर्णय लिया गया और एक मिली-जुली, फ्रांसीसी-बकुफु कंपनी बनाने का भी विचार किया गया।

इसी तरह, अंग्रेज़ भी धीरे-धीरे हान को समर्थन देने की ओर बढ़ रहे थे। 1866 में ब्रिटिश लिगेशन के एक अधिकारी अर्नेस्ट सैटो ने कई लेखों का जापानी में अनुवाद किया। ये लेख उसने विदेशियों से यह आग्रह करते हुए लिखे थे कि वे जापान को दाइम्यो के संग्रह के रूप में नहीं, बल्कि एक अलग सत्ता के रूप में लें। जापान धीरे-धीरे आंग्ल-फ्रांसीसी प्रतिद्वंद्विता में उलझ गया और साम्राज्यवादी घुसपैठ का खतरा तेजी से भयंकर रूप धारण करने लगा। बकुफु और फ्रांस तथा ब्रिटेन और सत्सुमा-चोशु के एक-दूसरे से जुड़ने के गंभीर आंतरिक परिणाम हुए। एक ओर दाइम्यो बकुफु के खिलाफ मज़बूत हो गए, लेकिन आपसी संदेह भी बढ़ा और मेल-मिलाप के प्रयास कठिन हो गए। अंत में, पश्चिमी सैनिक प्रौद्योगिकी और प्रशिक्षण पर बकुफु और दाइम्यो दोनों की निर्भरता बढ़ गई।

चोशु के खिलाफ लड़ाई से विदेशी ताकतें अपने आपको व्यापार में और अधिक शामिल करने में सफल रहीं, इनमें विभिन्न गुटों को बंदूकें देने का मामला विशेष रूप से महत्वपूर्ण था। कभी-कभी तो भय निराधार होता था, लेकिन ऐसी कई अफवाहें थीं कि दाइम्यो को आर्थिक और सैनिक सहायता मिल रही थी। बकुफु के एक अधिकारी कत्सु कैशु ने इंग्लैंड को एक "भूखा चीता" बताया और यह चेतावनी दी कि बाकुफु को फ्रांस से भी पैसा उधार नहीं लेना चाहिए, क्योंकि फ्रांस एक "भूखा भेड़िया" था।

विदेशियों की जापान के अंदर यात्रा और मिशनरी गतिविधियां भी समस्या खड़ी कर रहे थे। 1867 तक केवल राजनयिक ही नहीं, बल्कि तकनीशियन और मिशनरी भी जापानी क्षेत्रों में आवाजाही करने लगे थे। ह्योगो और ओसाका के खुलने के बाद यह आवाजाही बढ़ गई और बकुफु ने निर्देश जारी कर विदेशियों को नारा में आने, यात्रा करने और "इदो और ओसाका में थियेटर और रेस्तरां" में प्रवेश की अनुमति दे दी। इससे हिंसा की घटनाएं हुईं क्योंकि जनता अभी भी विदेशियों के जापान में घुसने को स्वीकार नहीं कर पाई थीं। विदेशियों पर आक्रमण की घटनाएं बढ़ गईं और इससे हर्जाने की मांगें भी और बढ़ गईं।

जापान के खोले जाने का यह मतलब नहीं था कि ईसाई धर्म को भी आने की अनुमति होगी। इसलिए धर्म पाबंदी जारी रही। फिर भी, विदेशियों की रिहायश बढ़ने के साथ ईसाई धर्म के पालन की संधिगत बंदरगाहों में अनुमति दे दी गई। मिशनरी आने लगे और पाबंदी के बावजूद उन्होंने अपने धर्म के प्रसार के लिए कदम उठाए। फ्रांसीसी मिशनरियों ने 1865 में नागासाकी में एक चर्च शुरू किया था और उन्होंने जापानियों को उसमे आने की अनुमति दे दी और ये जापानी खुले आम इस धर्म को मानने लगे। एक जापानी अधिकारी ने फ्रांसीसी प्रतिनिधि लियों रोशे से लिखकर शिकायत की कि मिशनरी गाँवों में प्रचार कर रहे थे, लोगों के घरों में रह रहे थे, सोना-चांदी इकट्ठा कर रहे थे और उनकी गतिविधियाँ अव्यवस्था फैलाने वाली थीं, इसलिए इन्हें रोका जाना चाहिए। इन समस्याओं से न केवल बाकुफु और विदेशियों के बीच, बल्कि स्थानीय लोगों और विदेशियों तथा बाकुफु के बीच भी तनाव की स्थितियाँ बनी और पहले से ही जटिल समस्या और भी खराब हो गई।

सन् 1857 तक विदेशी ताकतें आंतरिक प्रतिद्वंद्विताओं में गहरे तौर पर शामिल हो चुकी थीं और इससे जापान के लिए एक खतरनाक स्थिति हो गई जिसमें इस बात की बहुत संभावना थी कि वह उपनिवेशवाद का शिकार हो जाता। संधियों और विदेशी व्यापार के प्रवेश का आर्थिक असर अव्यवस्थित करने वाला रहा था। सूती कपड़े जैसे सस्ते बने सामान से प्राचीन काल से चला आ रहा स्वदेशी उद्योग बिगड़ रहा था। विशेष तौर पर जापान में अनुकूल सोना-चांदी विनिमय का इस्तेमाल विदेशी व्यापारियों ने जिस तरह किया, उसके असर विनाशकारी हुए। जापान में सोना-चांदी विनिमय 15:1 था। व्यापारी अपने साथ चांदी लाते थे और सस्ते में सोना खरीद लेते थे जिसे निर्यात करके वे भारी मुनाफा कमाते थे। मसाले के भारी निर्यात और चांदी की अत्यधिक भरमार से जापानी अर्थव्यवस्था लड़खड़ा गई और इससे जनता को भारी कठिनाई का सामना करना पड़ा। अनेक किसान विद्रोह और शहरी अशांति की स्थितियाँ उस तनाव को दिखाती हैं, जिससे होकर जापानी अर्थव्यवस्था और समाज गुजर रहा था।

जापान किसी विदेशी ताकत का उपनिवेश क्यों नहीं बना? इसे कई तरीकों से समझाया गया है। इसकी कई व्याख्याएं दी गई हैं। इन व्याख्याओं में चीन में साम्राज्यवादी देशों के हितों और जापान की अपेक्षाकृत उपेक्षा पर ज़ोर दिया गया है क्योंकि जापान ने एक बड़ी मंदी देने की सभावना नहीं बनाई। फिर भी, जैसा कि उपर्युक्त पंक्तियों में संकेत दिया गया है, साम्राज्यवादी ताकतें सक्रिय रूप से जापान के मामलों में हस्तक्षेप कर रही थीं, और यह केवल गृह युद्ध के थोड़े समय के लिए होने के कारण हुआ कि वे स्थानीय राजनीति में अपनी जड़ें गहरे नहीं जमा पाई। लियो रोशे को फ्रंसीसी सरकार ने वापस बुला लिया, इसलिए वह बाकुफु की ओर से कार्यवाही नहीं कर सका। अमेरिका अपने गृह युद्ध में उलझा हुआ था और ब्रिटेन जीतने वालों को समर्थन दे रहा था। इसलिए ऐसा कोई कारण नहीं था कि इससे परिणाम में कोई बदलाव हो।

नारों के अलावा, जापानी गुट इस बारे में व्यापक तौर पर स्पष्ट थे कि पृथकता अब एक वास्तविक विकल्प नहीं रह गया था और उन्हें पश्चिमी देशों से निपटना था और ऐसा केवल राष्ट्रीय मज़बूती के आधार पर ही हो सकता था। जापानी समाज साम्राज्यवादी प्रभुत्व से लोहा लेने के लिए नीतियाँ और रणनीतियाँ बनाने की स्थिति में था और इस मज़बूती का स्रोत जापान के लंबे और जटिल इतिहास में कम से कम 16वीं शताब्दी से ढूंढा जाना चाहिए। जापान का पश्चिमी दबावों से सफलतापूर्वक निपटना सांस लेने की जगह बनाने का मामला नहीं था।

बोध प्रश्न 2

1) जापान में पश्चिमी लोगों के साथ संबंध को लेकर चलने वाली बहस के बारे में लगभग दस पंक्तियों में लिखिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) कमोडोर पेरी की जापानी यात्रा का जापान के आंतरिक मामलों पर क्या प्रभाव पड़ा? लगभग दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....
....
....
....

....

....

....

....

....

....

3) निम्नलिखित वक्तव्यों में से कौन-सा सही (√) है, कौन-सा गलत (×)? निशान लगाइए:

   i) सोन्नो-जोई की नीति का अर्थ था "बर्बरों का स्वागत करो और सम्राट को निकाल बाहर करो।"

   ii) शोजान ने पूर्वी नैतिकता और पश्चिमी विज्ञान का नारा दिया।

   iii) इंग्लैंड और अमेरिका, जापान को अपना उपनिवेश बना सके।

   iv) अंग्रेजों और फ्रांसिसियों के हितों का टकराव जापान में हुआ।

8.6 सारांश

इस इकाई में पश्चिम के साथ जिन परस्पर संबंधों की पड़ताल की गई है, उसे दो कालों में बांटा जा सकता है :

पहला, 16वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध वाला काल, जब पुर्तगाली व्यापारी और मिशनरी जापान आए।

दूसरा, 19वीं शताब्दी का काल, जब पश्चिमी साम्राज्यवादी ताकतों ने जापान को साम्राज्यवादी व्यवस्था में घसीटना चाहा।

दोनों ही मामलों में जापान ने नए विचारों को ग्रहण करने और अपने लाभ के लिए उनसे सीखने की दिशा में एक खुलेपन और तेजी का परिचय दिया। जापान ने अपने सामाजिक ढांचे के अंदर बदलावों के प्रति एक रूढ़िवादी और बंद दृष्टिकोण का भी परिचय दिया। उसे काले जहाज़ों (जैसे कि कमोडोर पेरी और पुर्तगाली जहाज जाने जाते थे) को तो छूट देनी पड़ी, परन्तु जहाँ तक हो सका, उसने विदेशियों को प्रवेश से रोका और उनपर पाबंदी लगाई।

8.7 शब्दावली

दाइम्यो : सामंती राज्यों के शासक जिन्हें तीन गुटों में बांटा गया था इनमें से बाहरी दाइम्यो ताकुगावा के पहले के शत्रु थे जिन्हें सत्ता से बिल्कुल बाहर रखा गया था (जैसे सत्सुमा, चोशु) अपने इलाकों में उनके पास बहुत अधिक स्वायत्ता थी।

हान : दाइम्यो का क्षेत्र।

काइकोकू : विदेशियों के लिए देश को खोलने की नीति।

सकोकू : पृथकता की नीति जिसका तोकुगावा ने पालन किया।

सोन्नो-जोई : एक कहावत जिसका अर्थ होता है "सम्राट का सम्मान करो और बर्बरों को निकाल बाहर करो।"

8.8 बोध प्रश्नों का उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) अपना उत्तर उपभाग 8.2.2 के आधार पर लिखिए।

2) अपना उत्तर भाग 8.3 के आधार पर लिखिए।
3) भाग 8.3 देखिए।

बोध प्रश्न 2

1) अपना उत्तर भाग 8.4 के आधार पर लिखिए।
2) उपभाग 8.4.2 देखिए।
3) i) × ii) √ iii) × iv) √

इस खंड के लिए कुछ उपयोगी पुस्तकें

Bai Shouyi (ed) : **An Outline History of China,** Peking 1982.

Danis Twitchett and John K Fairbank (ed) : **The Cambridge History of China,** Volume 10, London 1978.

Immanuel C.Y. Hsu : **The Rise of Modern China,** Oxford 1985.

Jean Chesneaux **etal** : **China from the Opium Wars to the 1911 Revolution,** Delhi 1978.

Tan Chung : **Trinity to Dragon,** Delhi 1985.

E.H. Norman : **Japan's Emergence as a Modern State,** Indian reprint, Delhi 1977.